युद्ध और शांति
शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व और
समाजवाद में
शांतिपूर्ण संक्रमण के प्रसंग में

शिवदास घोष

युद्ध और शांति, शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व और समाजवाद में शांतिपूर्ण संक्रमण के प्रसंग में

जब आम तौर पर कम्युनिस्टों और खास तौर पर सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (सीपीएसयू) व चीन की कम्युनिस्ट पार्टी (सीपीसी) के बीच गंभीर सैद्धांतिक मतभेद पैदा हो रहे थे, तब की द्वितीय विश्वयुद्धोत्तर परिस्थिति का विश्लेषण।

इधर बहुत दिनों से हम लोग देखते आ रहे हैं कि दुनिया भर के कम्युनिस्टों के चिंतन जगत में मुख्यतः युद्ध और शांति, पूंजीवादी और समाजवादी व्यवस्थाओं के बीच शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व की नीति तथा विभिन्न देशों में शांतिपूर्ण तरीके से समाजवादी क्रांति साकार होने की संभावना आदि सवालों को लेकर काफी गलतफहमियां फैली हुई हैं। युगोस्लाविया की कम्युनिस्ट पार्टी के विचारों की बात को छोड़ भी दें, तो भी इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि कॉमरेड ख्रुश्चेव* के नेतृत्वाधीन सोवियत यूनियन की कम्युनिस्ट पार्टी (सीपीएसयू) के उपर्युक्त विषयों पर कुछ खास विचारों के बारे में, जो सीपीएसयू के मौजूदा नेतृत्व के विभिन्न लेखों और भाषणों के जरिये व्यक्त किये गये हैं, विभिन्न कम्युनिस्ट पार्टियों के बीच गंभीर मतभेद हैं। सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के तर्क और विचार की धारा प्रायः इस प्रकार है–दूसरे विश्वयुद्ध (1939–45) की समाप्ति के बाद से आज तक की अवधि में अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक शक्ति–विन्यास में आ चुके कुछ ''बुनियादी बदलावों'' के फलस्वरूप साम्राज्यवाद, युद्ध तथा सर्वहारा क्रांति आदि विषयों के संबंध में लेनिन के कुछ सर्वसम्मत प्रतिपादनों ने अब अपनी कार्यकारिता खो दी है, जिनकी गत विश्वयुद्ध के दौरान और उससे पहले पूरी तरह से कार्यकारिता थी। और भी सटीक रूप से कहें, तो उनके मतानुसार यह बात लेनिन द्वारा प्रतिपादित साम्राज्यवाद के युग में युद्ध की अनिवार्यता

---

* जो बाद में वर्गद्रोही हो गये थे।

और विश्व में स्थायी शांति सरंक्षण की संभावना के बारे में खास तौर पर लागू होती है। इसके अलावा, इन नेताओं ने पूंजीवादी देशों में सशस्त्र क्रांति के नियम को एकदम से खारिज नहीं किया है, परंतु फिर भी वर्तमान दौर में वे समाजवादी क्रांति के शांतिपूर्ण ढंग से सम्पन्न होने की संभावना को आम नियम के तौर पर ज्यादा महत्व दे रहे हैं। लेनिन के समय के और आज के साम्राज्यवाद की चारित्रिक विशेषताओं-लाक्षणिकताओं के बीच ''बुनियादी फर्क'' दिखाते हुए वे कहते हैं कि चूंकि वर्तमान युग साम्राज्यवाद के विघटन, समाजवाद की स्थापना तथा समाजवादी देशों के और भी आगे विकास व उन्नति का युग है, अत: लेनिन की थीसिस 'साम्राज्यवाद, युद्ध और समाजवादी क्रांति' के द्वारा इस युग का सही मूल्यांकन कर पाना मुमकिन नहीं है। लिहाजा, इन नेताओं के मतानुसार युद्ध और शांति के प्रश्न पर तथा पूंजीवादी देशों में समाजवादी क्रांति के विकास के आम नियम के प्रश्न पर लेनिन की प्रस्थापनाएं अब अपनी वैधता खो चुकी हैं। इसलिए बदली हुई विश्व परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में जो लोग अभी भी उन्हीं प्रस्थापनाओं से चिपके हुए हैं, वे मौजूदा अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के बदलाव के सही-सही तात्पर्य को समझने में असफल हो रहे हैं और फलस्वरूप साम्राज्यवाद की ताकत को बढ़ा-चढ़ाकर तथा समाजवादी मुल्कों की ताकत को, दुनिया के तमाम मुल्कों में चल रहे शांति आन्दोलन व मजदूर वर्ग के आन्दोलनों की ताकत को कम करके आंक रहे हैं।

न सिर्फ हमारी पार्टी सोशलिस्ट यूनिटी सेंटर ऑफ इंडिया, बल्कि कुछ अन्य कम्युनिस्ट पार्टियां भी सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (सीपीएसयू) के उपर्युक्त वक्तव्य के साथ सहमत होने में कठिनाई महसूस कर रही हैं। मौजूदा बदली हुई अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों की प्रधान चारित्रिक विशेषताओं-लाक्षणिकताओं तथा उनके तात्पर्य की समझदारी को केन्द्र करके ही मूलत: यह असहमति है। जहां तक सिद्धांत का ताल्लुक है, मौजूदा विश्व परिस्थिति में शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति की सटीकता और शांति बनाये रखने की संभावना के बारे में कोई मतभेद नहीं है। लेकिन शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की इस नीति के क्रांतिकारी तात्पर्य को सही-सही

समझने में और विश्व शांति को बनाये रखने के लिए वस्तुगत उपाय अपनाने के विषय में और इन दोनों को विभिन्न पूंजीवादी देशों में मजदूर वर्ग के क्रांतिकारी संघर्षों और उपनिवेशों व अर्द्ध उपनिवेशों में राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों के साथ संयोजित करने के बारे में मतभेद हैं। मतभेद इस सवाल पर भी है कि साम्राज्यवाद के युग में युद्ध की अनिवार्यता संबंधी लेनिन द्वारा प्रतिपादित नियम की क्या आज की 'बदली हुई' परिस्थिति में भी कार्यकारिता है या नहीं। फिर इस सवाल पर भी मतभेद है कि पूंजीवादी देशों में शांतिपूर्ण तरीके से समाजवादी क्रांति सम्पन्न करने की संभावना कहां तक है। इन मतभेदों के अलावा इस विचार पर भी मतभेद हैं कि ''बुर्जुआ जनतंत्र के अंग, संसद को जनता की इच्छा के सही औजार में रूपांतरित कर समाजवाद कायम किया जा सकता है।'' भले ही तर्क के लिए यह मान भी लिया जाये कि आज की 'बदली हुई' अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में पूंजीवादी देशों में शांतिपूर्ण ढंग से समाजवादी क्रांति को कार्यान्वित करना संभव है, तो भी क्या यह निष्कर्ष निकलना मार्क्सवाद के अनुरूप है कि संसदीय तरीके से समाजवाद हासिल करना, शांतिपूर्ण समाजवादी क्रांति के विभिन्न रूपों में से एक है?

ये सब मामले कम्युनिस्टों के लिए अत्यंत महत्व के हैं और इन सब ने उनके लिए गंभीर समस्याएं पेश कर दी हैं। इन सवालों की सही और वैज्ञानिक समझदारी के बिना कम्युनिस्टों के लिए औपनिवेशिक और अर्द्ध औपनिवेशिक मुल्कों में राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों, बड़े पूंजीवादी देशों में समाजवाद कायम करने के लिए संघर्षों और विश्वव्यापी युद्ध विरोधी शांति आन्दोलनों को कामयाबी की ओर ले जाना असंभव होगा। इसलिए वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति को मद्देनजर रखते हुए मार्क्सवादी-लेनिनवादी पद्धति विज्ञान की कसौटी पर उपर्युक्त मामलों का विश्लेषण और निरीक्षण-परीक्षण करना सर्वाधिक महत्व का है। इसके लिए वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति और इसकी प्रधान विशेषताओं-लाक्षणिकताओं के बारे में सही विचार रखना सबसे पहले जरूरी है।

दूसरे विश्वयुद्ध से पहले अपवाद के तौर पर अकेले समाजवादी देश सोवियत संघ को छोड़कर पूरी दुनिया या तो साम्राज्यवादी-पूंजीवादियों के प्रत्यक्ष शासन में थी या उनके कारगर राजनैतिक-आर्थिक प्रभाव में थी। यह अकेला समाजवादी देश भी तब विश्व साम्राज्यवाद-पूंजीवाद के द्वारा घिरा हुआ था। सोवियत संघ को छोड़कर और कोई देश उस समय अन्तर्राष्ट्रीय शांति के संरक्षण के लिए राज्य स्तर पर गंभीरता और ईमानदारी से नहीं लड़ा। लेकिन विश्व शांति को बनाये रखने के लिए अपने संजीदा प्रयासों के बावजूद यूएसएसआर के पास शक्तिशाली साम्राज्यवादी ताकतों की युद्ध की घिनौनी साजिशों को विफल करने की पर्याप्त शक्ति नहीं थी। इसके विपरीत साम्राज्यवादियों-पूंजीवादियों के वश में निर्णायक ताकत थी या यूं कहें कि युद्ध और शांति पर उनकी कही बात ही अंतिम होती थी। अतः जब भी और जैसे भी साम्राज्यवाद-पूंजीवाद को जरूरत पड़ी युद्ध छिड़ गया। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद सोवियत संघ (यूएसएसआर) और चीन की अगुआई में यूरोप, मंगोलिया, उत्तर कोरिया और उत्तर वियतनाम के जन गणतंत्रों से मिलकर बनी एक शक्तिशाली विश्व समाजवादी व्यवस्था अस्तित्व में आ गयी। इसने विश्व पूंजीवादी बाजार के समानांतर एक शक्तिशाली समाजवादी बाजार को भी जन्म दिया। पूंजीवादी व्यवस्था के चुंगल से एक विशाल क्षेत्र के निकल जाने के फलस्वरूप पूंजीवाद बहुत बड़ी हद तक संकुचित हो गया। समाजवादी खेमे की लगातार बढ़ती ताकत के साथ युक्त विश्व समाजवादी बाजार के अस्तित्व और विकास ने युद्धोत्तर काल में साम्राज्यवादियों को काफी हद तक कोने में धकेल दिया है। उपनिवेशों और अर्द्ध उपनिवेशों में जनता के साम्राज्यवाद-विरोधी राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों का तेज होना और इन आन्दोलनों की बढ़ती लहरों के रूबरू साम्राज्यवादियों का पीछे कदम हटाना वर्तमान युग की महत्वपूर्ण विशेषताएं हैं। प्रयोजनवादी सोच-विचार से संचालित होकर साम्राज्यवादी अपनी पुरानी औपनिवेशिक नीति को बदलते जा रहे हैं और अपने पूर्ववर्ती उपनिवेशों में राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग के साथ संधियों और समझौतों के जरिये उनके हाथों में वहां

की राजसत्ता को हस्तांतरित एवं साथ ही साथ अपने आर्थिक हितों को बरकरार रखने का भी प्रयास करते जा रहे हैं।

एशिया और अफ्रीका के नव स्वाधीन देशों (पहले के उपनिवेशों) के पूंजीपति वर्ग न सिर्फ अपने देश की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का पुनर्निर्माण कर रहे हैं, जिसकी वजह से शक्तिशाली पूंजीवादी देशों का बाजार उत्तरोत्तर संकुचित होता जा रहा है, बल्कि कुछ नव स्वाधीन देश तो पहले से ही संकुचित विश्व पूंजीवादी बाजार में बड़े पूंजीवादी देशों के साथ प्रतियोगी के रूप में उतर आये हैं।

समाजवादी खेमे की लगातार बढ़ती शक्ति से जुड़े विश्व समाजवादी बाजार के अस्तित्व और विकास, उपनिवेशों और अर्द्ध उपनिवेशों में राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों की बढ़ती लहर, पूर्ववर्ती उपनिवेशों में परंपरागत बाजार का क्षय, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के रंगमंच पर पूर्ववर्ती उपनिवेशों के बुर्जुआ वर्ग का नये प्रतियोगियों के रूप में आविर्भाव–इन सब कारणों ने एक साथ मिलकर विश्व साम्राज्यवादी-पूंजीवादी व्यवस्था के अंदर विभिन्न तरह के द्वन्द्वों को जबरदस्त तेज कर दिया है और इस तरह साम्राज्यवादी औपनिवेशिक व्यवस्था के पूर्ण विघटन की प्रक्रिया को त्वरित कर दिया है। इस संबंध में यह ध्यान रखना चाहिए कि हालांकि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था बहुत अर्सा पहले ही आम संकट के दौर में प्रवेश कर गयी थी, फिर भी पहले और दूसरे विश्वयुद्धों के बीच की अवधि के दौरान विश्वव्यापी मंदी और क्षरण व ठहराव के रुझान के बावजूद खास तौर पर ''सापेक्ष स्थायित्व'' जो पूंजीवादी बाजार को उस समय प्राप्त था, की मौजूदगी की वजह से पूंजीवाद कुल मिलाकर पहले की बजाय कहीं ज्यादा तेजी से विकास करता जा रहा था। लेकिन जिन नयी परिस्थितियों में विश्व पूंजीवादी व्यवस्था आज अस्तित्व में है, उनमें 'पूंजीवादी विश्व बाजार का सापेक्ष स्थायित्व का नियम' अब लागू नहीं रहा। इसलिए, अपने-अपने आर्थिक और राजनैतिक प्रभाव क्षेत्रों को विस्तार देने में साम्राज्यवादी अपने खुद के बीच झगड़े मिटाना अभी भी कठिनतर पा रहे हैं। इसके फलस्वरूप उनके बीच के अंतर्द्वन्द्व नग्न रूप लेते जा रहे हैं। संकट जितना

अधिकाधिक तीव्र होता जा रहा है, उतनी ही प्रचंडता के साथ साम्राज्यवादी अपनी अर्थव्यवस्था का सैन्यीकरण करते जा रहे हैं। निश्चय ही, लगातार बढ़ती सैन्य खपत द्वारा कृत्रिम उद्दीपन पैदा करने के जरिये पूंजीवादी बाजार का सापेक्ष स्थायित्व कम से कम अल्पकालिक तौर पर भी बनाये रखने के लिए साम्राज्यवादी-पूंजीवादी देशों द्वारा किये जाने वाले प्रयास व्यर्थ प्रयासों के सिवा और कुछ नहीं हैं।

इस अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति के संदर्भ में युद्ध और शांति के मसले पर विचार करना चाहिए। यह कहने की कोई खास जरूरत नहीं है कि वर्तमान में अकेले समाजवादी देशों की संयुक्त शक्ति* ही कुछ अंशों में साम्राज्यवादी ताकतों की शक्ति से श्रेष्ठतर है। इस पर फिर एशिया और अफ्रीका के नये-नये स्वतंत्र हुए उदीयमान बुर्जुआ राष्ट्रवादी राष्ट्र अपने आर्थिक विकास के ही स्वार्थ में अस्थायी तौर पर ही सही, विश्व शांति की ताकतों के पक्ष में झुक गये हैं।** इसके अलावा, सारे संसार के शांतिपसंद लोग आज अन्यायपूर्ण युद्धों के खिलाफ हैं और अन्तर्राष्ट्रीय शांति की हिफाजत करने लिए समाजवादी खेमे के तमाम सुसंगठित और सुनियोजित प्रयासों का समर्थन करते हैं; दूसरी तरफ, शक्तिशाली साम्राज्यवादी देशों के बीच विरोध और भी ज्यादा नग्न और स्पष्ट हो गया है। बड़े पूंजीवादी देशों में मजदूर वर्गीय आन्दोलन जोर पकड़ते जा रहे हैं और उपनिवेशों में राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन जबरदस्त प्रगति पर हैं–इन सब कारणों ने मिलकर साम्राज्यवाद की ताकत को बहुत बड़ी हद तक कमजोर कर दिया है। संक्षेप में, शांति की शक्तियां इस समय युद्धों की शक्तियों से ज्यादा मजबूत हैं और समाजवादी शांति खेमे के नेतृत्व में संगठित दुनिया के शांतिपसंद लोगों के लिए अब जंगखोर साम्राज्यवादी ताकतों पर शांति थोपना और उन्हें

* जब यह लिखा गया था तब समाजवादी देशों के बीच आपसी संबंध शत्रुतापूर्ण नहीं हुए थे।

** भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (सीपीआई) उस समय पंडित नेहरू को शांति के मसीहा के रूप में गुणगान करने के समूहगान में शामिल हो गयी थी, लेकिन बाद में घटनाओं ने साबित किया कि वह कितनी गलत थी।

दूसरे देशों के घरेलू मामलों में दखलअंदाजी करने से रोकना संभव है। इन अनुकूल परिस्थितियों के नतीजे के तौर पर विश्व शांति सरंक्षण की वास्तविक संभावनाएं मौजूद हैं। लेकिन ऊपर की बातों से यह निष्कर्ष निकालना गलत होगा कि शांति के पक्ष में नयी परिस्थितियों की वजह से लेनिन की यह थीसिस कि साम्राज्यवाद अनिवार्य तौर पर युद्ध को पैदा करता है, पुरानी पड़ गयी है। क्योंकि साम्राज्यवाद आज एक सर्व समावेशी विश्व व्यवस्था के रूप में हालांकि विद्यमान नहीं है, जैसा कि अतीत में था और पहले की बजाय काफी कमजोर है, फिर भी यह सोचने का कोई तर्कसंगत आधार नहीं है कि साम्राज्यवाद अपने आप खत्म हो जायेगा या यह हमला करने और युद्ध छेड़ने की अपनी सारी ताकत खो चुका है, क्योंकि साम्राज्यवाद न केवल अभी भी एक विश्व व्यवस्था के रूप में अस्तित्व में है, बल्कि यह अभी भी क्षमतावान है। सभी दिशा से खूब दबा दिये जाने और बढ़ते संकटों से जर्जरित होते जाने से साम्राज्यवाद अधिक से अधिक सैन्यीकृत अर्थव्यवस्था की ओर मुड़ता जा रहा है। जितनी ज्यादा सैन्यीकृत अर्थव्यवस्था बनती जा रही है, उतना ही ज्यादा उन्मत होता साम्राज्यवाद अपनी दुस्साहसिक कार्रवाइयों की ओर उन्मुख होता जा रहा है। हथियारों की होड़ लगाने और युद्ध की चौतरफा तैयारियां करने के मामले में साम्राज्यवादियों ने अतीत के अपने सारे रिकार्ड तोड़ दिये हैं। साम्राज्यवादियों ने समाजवादी खेमे के चारों ओर जो फौजी अड्डे बनाये हुए हैं, वे सब जन संहार के घातक हथियारों से लैस हैं और एक पल के नोटिस पर कार्रवाई करने को तैयार हैं। पश्चिमी जर्मनी में साम्राज्यवादियों ने जर्मन रेवांचिज्म को फिर से चला दिया है। जापान में समरवाद (मिलिटरिज्म) को पूरी तरह बहाल कर दिया गया है। हालांकि हालातों के दबाव में साम्राज्यवादी अपनी पुरानी औपनिवेशिक नीति बदलने के लिए मजबूर कर दिये गये हैं, फिर भी उनकी आक्रमणकारी नीति जरा भी नहीं बदली है। कमजोर और पिछड़े पूंजीवादी देशों पर आर्थिक और राजनैतिक वर्चस्व कायम करने के लिए शक्तिशाली पूंजीवादी देशों के बीच प्रतिद्वन्द्विता पर आधारित बैर-विरोध दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा है।

ये सब तथ्य संदेहातीत रूप से दिखाते हैं कि साम्राज्यवाद के युग में युद्धों की अनिवार्यता के बारे में लेनिन की थीसिस आज भी पहले की तरह ही कार्यकारी है।

कोई भी, जो द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के इस सिद्धांत को सही-सही समझता है कि ''मात्रात्मक परिवर्तन गुणात्मक परिवर्तन की ओर ले जाता है'' वह यह देखे बिना रह नहीं सकता कि किसी परिघटना की दीर्घकालीन विकास प्रक्रिया में, जब तक कि वह परिघटना ही मात्रात्मक परिवर्तन के त्वरित विकास के जरिए चरम बिंदु पर पहुंचकर गुणात्मक परिवर्तन में तब्दील होकर अपने से गुणात्मक रूप से भिन्न एक नयी परिघटना को जन्म नहीं दे देती, उस परिघटना की मूल चारित्रिक विशेषताओं-लाक्षणिकताओं को तय करने वाली अंदरूनी बुनियादी प्रेरक शक्तियां तब तक अवलुप्त नहीं होतीं, बल्कि अस्तित्व में बनी रहती हैं, भले ही उस परिघटना के भीतर मौजूद अंतर्द्वन्द्व के इर्द-गिर्द अन्यान्य शक्तियों में कितना ही मात्रात्मक एवं गुणात्मक परिवर्तन क्यों न हो गया हो। इसलिए हर मार्क्सवादी-लेनिनवादी को जानना चाहिए कि हर युग अपने विकास की स्वाभाविक प्रक्रिया में विभिन्न महत्वपूर्ण परिवर्तनों को देखने को बाध्य है। लेकिन जब तक पुराने युग की भस्म पर पूर्णतया नये युग का आविर्भाव नहीं हो जाता, तब तक इन परिवर्तनों के बावजूद पुराने युग की मूल चारित्रिक विशेषताएं-लाक्षणिकताएं बनी रहती हैं।

आज की बदली हुई अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में सामान्य शब्दों में यह कहना कि युद्ध का होना अनिवार्य नहीं रह गया है—एक तरह की बात है एवं बहुत अच्छी बात भी है, लेकिन उसे इस धारणा के साथ गड्डमड्ड कर देना कि साम्राज्यवाद के युग में युद्ध की अनिवार्यता के संबंध में लेनिन की थीसिस आज पुरानी पड़ गयी है, बिल्कुल दूसरी बात है एवं बहुत सारे खतरों से भरी हुई है। इस संदर्भ में हमें दूसरी यह बात याद रखनी चाहिए कि हां, यह बात सही है कि विश्व सामाजिक शक्तियों के ध्रुवीकरण की वजह से, विश्व सामाजिक शक्ति के वर्तमान विन्यास में संयुक्त राज्य अमेरिका के नेतृत्व में साम्राज्यवादी युद्ध खेमे और सोवियत

रूस और चीन के नेतृत्व में समाजवादी शांति खेमे का द्वन्द्व प्रधानतः अब अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं की दिशा को तय करता है, लेकिन साथ ही यह याद रखना होगा कि युद्ध का मूल कारण इस द्वन्द्व में निहित नहीं है। निश्चय ही यह बाजार पर कब्जा करने के लिए साम्राज्यवादी-पूंजीवादी देशों के बीच विरोधात्मक द्वन्द्व में निहित है।

सारी दुनिया में समाजवादी क्रांति सफलीभूत होने से या जब मौजूदा पूंजीवादी घेराबंदी को हटा दिया जायेगा और उसकी जगह विश्व समाजवादी व्यवस्था की घेराबंदी में चंद बचे-खुचे पूंजीवादी देश आ जायेंगे, केवल तभी मानव समाज का युद्ध से हमेशा के लिए पिंड छुड़ाना संभव होगा। ऐसी परिस्थिति का आ जाना अब दूर भविष्य की बात नहीं है। लेकिन आज की जो यह कटु वास्तविकता है कि समाजवादी खेमा आज भी साम्राज्यवादी युद्ध खेमे की घेराबंदी में है और स्थानीय व आंशिक युद्धों के विभिन्न रूपों में युद्ध अभी भी जारी हैं, जो सदा एक बड़े पैमाने के युद्ध में फूट पड़ने के खतरे से भरे हैं, अगर कोई मोहग्रस्तता इसको नजरअंदाज करने की झोंक ला दे, तो यह न केवल शांति की जीत को सुनिश्चित करने के लिए ठोस कदम उठाने में मुश्किलें पैदा कर देगी, बल्कि विभिन्न देशों में मजदूर वर्गीय आन्दोलनों को वैचारिक तौर पर निहत्था कर देगी और अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादी आन्दोलन में पहले से ही दिखाई दे रहे सुधारवादी-संशोधनवादी रुझानों को और बढ़ा देगी। हमारे देश में कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया नामधारी पार्टी के कार्यकलापों की तो कौन कहे, दुनिया की विभिन्न कम्युनिस्ट पार्टियों के कार्यकलापों पर भी–युद्ध की अनिवार्यता के नियम के बारे में लेनिन की थीसिस पुरानी पड़ गयी है–की इस भ्रांत धारणा ने जो प्रतिक्रिया पैदा की है, उसको हम चिंता के साथ देखे बिना नहीं रह सकते। गलत विचार बनने के फलस्वरूप एक और विश्वयुद्ध छेड़ने की साम्राज्यवादियों की साजिश को बल मिलेगा, भले ही हमारी चाह इसके विपरीत हो।

अतः कम्युनिस्टों को ध्यान रखना चाहिए कि मौजूदा बदली हुई अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में शांति को बनाये रखने की संभावना और युद्ध के छिड़ जाने का खतरा दोनों ही समान रूप से वास्तविक हैं।

एक पर अनावश्यक रूप से जोर देना और दूसरे को कम करके आंकना एक अक्षम्य भूल होगी। इस त्रुटिपूर्ण नजरिये के कारण, कुछ कम्युनिस्ट नेता विश्व शांति के लिए ठोस कदम उठाने के मामले में साम्राज्यवादी-पूंजीवादी देशों के साथ यूएनओ के भीतर और बाहर समझौता वार्ता, नि:शस्त्रीकरण प्रस्ताव, शांति आन्दोलन और पूंजीवादी व समाजवादी देशों के बीच शांतिपूर्ण सहअस्तित्व की नीति को विशेष अहमियत दे रहे हैं (इसमें कोई संदेह नहीं कि विश्व शांति बनाये रखने के मामले में ये बहुत महत्वपूर्ण कदम हैं), जबकि उपनिवेशों व अर्द्ध उपनिवेशों के राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों को तेज करने और उन्हें समर्थन देने और पूंजीवादी देशों में समाजवाद कायम करने के संघर्षों को विकसित करने को कम महत्व दे रहे हैं, जिनमें साम्राज्यवाद-पूंजीवाद को उखाड़ फेंकने की संभावना एवं जिसके जरिये विश्व में स्थायी शांति स्थापित करने की गारंटी मौजूद है। आज की बदली हुई परिस्थिति की प्रधान चारित्रिक विशेषताओं-लाक्षणिकताओं के इस महत्व को ठीक-ठीक समझ पाने से कारगर ढंग से स्थायी शांति बनाये रखना संभव होगा और उपनिवेशों व अर्द्ध उपनिवेशों में राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों और पूंजीवादी देशों में समाजवाद के लिए संघर्षों को तेज करने में ही शांति आन्दोलन संचालित करने का काम ठोस रूप से समाहित है।

चाहे वह 'युद्ध और शांति' का प्रश्न हो, 'पूंजीवादी और समाजवादी व्यवस्थाओं के बीच शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व' का प्रश्न हो अथवा और कोई प्रश्न हो, हर प्रश्न के प्रति मार्क्सवादी-लेनिनवादी, क्रांति की प्रक्रिया को तेज करने के एकमात्र उद्देश्य से ही रुख अपनाते हैं। इसलिए वर्तमान शांति आन्दोलन जैसे गंभीर राजनैतिक आन्दोलन को संचालित करते समय कम्युनिस्टों को हमेशा यह ध्यान रखना चाहिए कि इस जुझारू आन्दोलन का उद्देश्य किसी भी कीमत पर येन-केन-प्रकारेण शांति कायम करना नहीं है, जैसा कि युद्ध भीरु शांतिवादी (pacifists) समझते हैं। अगर हम शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति और शांति आन्दोलन के क्रांतिकारी महत्व को चरितार्थ करना चाहते हैं, तो हमें कुछ बातों पर विशेष ध्यान देना होगा। महान नवम्बर क्रांति के समय रूस के मजदूरों व अन्य शोषित जन साधारण

को केवल जार और देशी प्रतिक्रियावादी ताकतों के खिलाफ ही नहीं, बल्कि शक्तिशाली साम्राज्यवादी दखलअंदाजों से भी टक्कर लेनी पड़ी थी और उन्हें पराजित करना पड़ा था, तब कहीं जाकर वे क्रांति के जरिये कब्जा की हुई राजसत्ता को कायम और सुदृढ़ कर सके थे। इसी प्रकार चीनी जनता को भी न सिर्फ च्यांग शासन को उखाड़ फेंकना पड़ा था, बल्कि अमेरिकी फौजी ताकत से भी लोहा लेना पड़ा। परंतु बदली हुई अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों में अगर शांति आन्दोलन के बल पर साम्राज्यवादियों को शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति का और अन्य मुल्कों के अंदरूनी मामलों में दखलअंदाजी न करने की नीति का पालन करने के लिए मजबूर किया जा सकेगा, तभी पूंजीवादी देशों, उपनिवेशों और अर्द्ध उपनिवेशों में मजदूरों और अन्य शोषित जनसाधारण के लिए अपने-अपने मुल्क में क्रांति के जरिये अपने-अपने शत्रुओं को उखाड़ फेंकना आसान होगा। वर्तमान शांति आन्दोलन और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति का क्रांतिकारी महत्व इस बात में निहित है कि अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में ऐसी ही अनुकूल स्थिति का निर्माण किया जाये ताकि उपनिवेशों, अर्द्ध उपनिवेशों और पूंजीवादी देशों में क्रांतिकारी शक्तियों के लिए अपने-अपने शत्रुओं के विरुद्ध बिना किसी बाहरी हस्तक्षेप के क्रांतिकारी संघर्ष चलाना संभव हो सके। इस प्रकार विश्व स्तर पर शांति आन्दोलन या शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति न तो कोई राजनैतिक दांव-पेंच है और न ही युद्ध की तैयारियों के लिए समय पाने की कोई कपट चाल है—जैसा कि अनेक नकली मार्क्सवादी सोचते हैं। बल्कि इसके विपरीत अगर सही-सही समझा जाये, तो यह बड़े पूंजीवादी देशों में समाजवादी क्रांति और उपनिवेशों और अर्द्ध उपनिवेशों में राष्ट्रीय आजादी आन्दोलनों की रफ्तार तेज करने के जटिल क्रांतिकारी उपायों में से एक है, जो मौजूदा स्थिति में विश्व सर्वहारा क्रांति का अंग बन चुके हैं। युद्ध की शक्तियों की बजाय शांति की शक्तियों की कुछ अंशों में श्रेष्ठता और समाजवादी देशों की तुलना में हाल के समय में साम्राज्यवाद की सापेक्ष कमजोरी के फलस्वरूप पूंजीवादी देशों में क्रांतिकारी आन्दोलनों और उपनिवेशों व अर्द्ध उपनिवेशों में राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों की तीव्र वृद्धि और विकास के लिए परिस्थितियां अब पहले की बजाय काफी

ज्यादा अनुकूल हो गयी हैं। शांति आन्दोलन और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति इस ढंग से चलायी जानी चाहिए कि उससे क्रांतिकारी आन्दोलन की रफ्तार तेज हो। बदली हुई मौजूदा अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति का सही महत्व अनुकूल परिस्थितियों को जन्म देने में ही निहित है–यह न समझ पाना ही वर्तमान शांति आन्दोलन के स्वरूप, संभावना और सीमाबद्धता के बारे में सही धारणा न बना पाने के लिए मुख्यत: जिम्मेदार है।

साम्राज्यवादी खेमे के अंदर अंदरूनी द्वन्द्वों और एक तरफ एशिया और अफ्रीका में नव स्वाधीनता प्राप्त पूंजीवादी राष्ट्रों और दूसरी तरफ पश्चिमी साम्राज्यवादी देशों के बीच अंतर्द्वन्द्वों की सही-सही प्रकृति को समझने में विफल रहने एवं शांति के सवाल पर मोहग्रस्त रहने के कारण नव स्वाधीनता प्राप्त देशों की कई नुकसानदायक कार्रवाइयों और गतिविधियों को आज की बदली हुई परिस्थितियों में भी बर्दाश्त किया जा रहा है। दरअसल, इन कुछ नव स्वाधीनता प्राप्त देशों के संबंध में समाजवादी देशों द्वारा शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति का जिस तरह से अनुसरण किया जा रहा है, वह कुछ पहलुओं से खुशामद करने के समान है।

शांति आन्दोलन और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति के जरिये बहुत सारी विजय प्राप्त करने के बावजूद क्रांतिकारी आन्दोलन के विकास के लिए अत्यंत अनुकूल मौजूदा बदली हुई अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में पूंजीवादी और औपनिवेशिक देशों में लोगों के क्रांतिकारी आन्दोलनों के वैचारिक और सांगठनिक पक्ष कितने मजबूत हुए हैं–इस बहुत ही महत्वपूर्ण सवाल से किसी भी बहाने कन्नी नहीं काटी जा सकती है। इस सवाल की रोशनी में अगर पूंजीवादी जुए से मुक्ति के लिए संघर्ष और भारत, बर्मा व एशिया-अफ्रीका के अन्य नव स्वाधीनता प्राप्त पूंजीवादी देशों के लोगों के द्वारा चलाये जा रहे अन्य जन आन्दोलनों के स्वरूप और सीमा का जायजा लेने से यह खूब अच्छी तरह से स्पष्ट हो जायेगा कि इन देशों में क्रांतिकारी आन्दोलनों को वस्तुत: सैद्धांतिक क्षेत्र में शक्तिहीन किया जा रहा है।

इन देशों के शासक बुर्जुआ वर्ग की केवल साम्राज्यवाद-विरोधी और युद्ध विरोधी गतिविधियों और नीतियों का (जो वस्तुगत रूप से

विश्व शांति बनाये रखने में सहायक हैं) गुणगान किया जा रहा है और बढ़-चढ़कर सराहना की जा रही है, जबकि इन बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा है कि (1) समाजवादी देशों की स्थायी शांति नीति और नव स्वाधीन पूंजीवादी देशों की बेभरोसे की शांति नीति के बीच बुनियादी फर्क है; (2) इन देशों की राज्य संरचना और प्रशासनिक व्यवस्था में फासीवाद की ओर झुकाव बढ़ रहा है एवं फासीवादी लक्षण विविध रूप में प्रकट हो रहे हैं; (3) साम्राज्यवाद व विस्तारवाद की प्रवृत्ति बढ़ रही है, इनमें से कुछ देशों में कभी-कभी इसने नग्न रूप धारण भी किया है और सर्वोपरि (4) यह तथ्य कि ये नव स्वाधीन पूंजीवादी देश एशिया-अफ्रीका में समाजवादी क्रांतिकारी संघर्षों के विकास को जबरन कुचलने के प्रयास में विश्व साम्राज्यवादी-पूंजीवादी व्यवस्था के दलालों के तौर पर अधिकाधिक अहम भूमिका अदा करते जा रहे हैं। चाहे कोई भी तथाकथित कम्युनिस्ट पार्टी क्यों न हो, उसकी ओर से इन बिंदुओं पर अनवरत वैचारिक संघर्षों को चलाकर लोगों को शिक्षित करने का कोई प्रयास नहीं किया जा रहा है।

इसके अलावा सीपीएसयू की 20वीं पार्टी कांग्रेस से ही सीपीएसयू के नेताओं के भाषणों और लेखों के द्वारा यह प्रचार किया जा रहा है कि अनेक पूंजीवादी देशों में शांतिपूर्ण तरीके से समाजवादी क्रांति को सम्पन्न करने की संभावना आज की अनुकूल अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में एक वस्तुगत वास्तविकता बन चुकी है। इस बिंदु की व्याख्या करते हुए ख्रुश्चेव ने कहा: ''इन परिस्थितियों में मेहनतकश किसानों, बुद्धिजीवियों और सभी देशप्रेमी ताकतों को मजदूर वर्ग के इर्द-गिर्द लामबंद कर और जो अवसरवादी तत्व पूंजीपतियों और जमींदारों के साथ समझौते की नीति को छोड़ने में असमर्थ हैं, उन्हें दृढ़ता के साथ खदेड़ कर जनहित-विरोधी प्रतिक्रियावादी ताकतों को परास्त करने, संसद में स्थायी बहुमत हथियाने और संसद को बुर्जुआ लोकतंत्र के एक अंग से जन इच्छा के एक सच्चे औजार में तब्दील करने में मजदूर वर्ग सक्षम है''। हालांकि अब तक इन नेताओं ने सशस्त्र क्रांति के नियम को पूरी तरह से ठुकराया नहीं है, फिर भी बदली हुई अन्तर्राष्ट्रीय

परिस्थिति में एक आम नियम के तौर पर वे पूंजीवादी देशों में समाजवादी क्रांति को शांतिपूर्ण तरीके से सम्पन्न करने की संभावना पर दिन-ब-दिन अधिकाधिक जोर देते जा रहे हैं। निस्संदेह यह विचार कम्युनिस्टों के वैचारिक संघर्षों के क्षेत्र में खतरनाक भ्रम पैदा करता जा रहा है और मौजूदा संशोधनवादी रुझानों को यह पहले ही बढ़ावा दे चुका है।

इस पर पहले ही चर्चा की जा चुकी है कि सीपीएसयू के नेताओं द्वारा शांति बनाये रखने की संभावना की चर्चा करते हुए विभिन्न रूपों में युद्धों के फूट पड़ने के खतरा को कम करके आंका जा रहा है। दो कारणों से ये भ्रम व्याप्त हैं–पहला, यह समझने में विफलता कि साम्राज्यवाद के युग में साम्राज्यवादी-पूंजीवादी देशों के बीच युद्धों की अनिवार्यता का नियम अभी भी वैध है और दूसरा, ख्रुश्चेव और अन्य नेताओं ने जबदस्त शक्तिशाली शांति की ताकतों के विरोध के मुकाबले में जो विश्व साम्राज्यवाद की विश्वयुद्ध छेड़ने की सापेक्ष कमजोरी है, उसको और देश विशेष में मजदूर वर्ग और अन्य शोषित जन साधारणों के क्रांतिकारी संघर्षों का दमन करने की बुर्जुआ वर्ग और इसकी राज्य सत्ताओं की जो ताकत है, उन दोनों को गड्डमड्ड कर दिया है। ये सिद्धांतकार यह समझने में विफल रहे कि युद्ध की शक्तियों पर शांति की शक्तियों की श्रेष्ठता और शांति की शक्तियों की झोली में आयी कई शानदार जीतों के बावजूद विश्व परिस्थिति उस अवस्था तक नहीं बदली है कि पूंजीपति वर्ग समाजवादी देशों से डरकर अपने-अपने देश में क्रांतिकारी संघर्षों को बलपूर्वक कुचलने की हिम्मत न कर सके। इतिहास में ऐसा एक भी उदाहरण नहीं है, जो हमारे उपरोक्त वक्तव्य को गलत सिद्ध कर दे, उल्टे बहुत ही सीधी-सादी आर्थिक और जनवादी मांगों पर आधारित लोगों के साधारण आन्दोलनों तक का पूंजीपतियों द्वारा विशिष्ट फासीवादी ढंग से बेरहमी से दमन कर दिये जाने के असंख्य उदाहरण इतिहास पेश करता है। लंबी संसदीय परंपरा वाले देशों में भी संसदीय लोकतांत्रिक अधिकारों और सुख-सुविधाओं में धीरे-धीरे कटौती की जा रही है। यहां तक कि बुर्जुआ वर्ग के लिए भी संसद तेजी से

अपनी उपयोगिता खोती जा रही है। विकसित हों या पिछड़े—सभी पूंजीवादी मुल्कों की राज्य संरचना और प्रशासनिक ढांचे में फासीवाद अपने को विभिन्न रूपों में पहले की अपेक्षा और भी ज्यादा स्पष्ट तौर पर प्रकट कर रहा है। इस कठोर वास्तविकता के सामने किसी भी मार्क्सवादी-लेनिनवादी के लिए पूंजीवाद से समाजवाद में शांतिपूर्ण तरीके से संक्रमण के सिद्धांत की वकालत करना असंभव है, जब तक कि वह बुर्जुआ मानवतावादी भ्रमों से पूरी तरह अभिभूत न हो।

लेकिन संसद को पूंजीपतियों के वर्ग हित की पूर्ति करने वाले अंग से ''जन इच्छा के सही औजार में तब्दील करके'' शांतिपूर्ण ढंग से समाजवाद कायम करने की धारणा में चिंतन के इस दिवालियेपन ने अपनी अत्यंत भयानक अभिव्यक्ति पायी है। यह सच है कि सैद्धांतिक दृष्टि से मार्क्सवाद-लेनिनवाद में पूंजीवाद से समाजवाद में शांतिपूर्ण ढंग से संक्रमण की संभावना को बिल्कुल खारिज नहीं किया गया है। परन्तु अब की बदली हुई अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में पूंजीवाद से समाजवाद में शांतिपूर्ण ढंग से संक्रमण संभव है या नहीं—यह एक चर्चा-बहस का विषय है। हम इसे संभव नहीं मानते। लेकिन अगर यह मान भी लिया जाये कि शांतिपूर्ण ढंग से यह प्राप्ति संभव है, तो भी ''संसद को बुर्जुआ जनतंत्र के एक अंग से जन इच्छा के एक सही औजार में तब्दील करके'' शांतिपूर्ण ढंग से समाजवाद कायम करने का सिद्धांत फिलिस्तीनी (भ्रामक) सिद्धांत है और मार्क्सवाद-लेनिनवाद से कोई संगति नहीं रखता। अगर इन सिद्धांतकारों ने यह समझने की तकलीफ की होती कि उत्पादन के विकास के एक खास ऐतिहासिक दौर में आर्थिक आधार विशेष के ऊपरी ढांचे के रूप में इसके प्रशासन के राजनैतिक रूप के तौर पर एक निश्चित वर्ग के हितों की पूर्ति करने के लिए संसद का जन्म हुआ था, तो वे अवश्य ही समझ जाते कि सर्वहारा जनतंत्र विभिन्न देशों में पायी जाने वाली वस्तुगत स्थितियों के अनुसार, चाहे उसका जो भी रूप क्यों न हो, बुर्जुआ जनतंत्र (सभी बुर्जुआ संस्थाओं) से चरित्र में बुनियादी तौर पर भिन्न है और इसलिए एक की राजनैतिक संस्था

दूसरे की राजनैतिक संस्था के तौर पर काम नहीं कर सकती। यह न केवल समाजवादी समाज के आधार समाजवादी अर्थव्यवस्था के ऊपरी ढांचे के तौर पर काम नहीं कर सकती, बल्कि यह अवश्य ही समाजवादी समाज के आधार के जन्म और विकास को अवरुद्ध करेगी। इसलिए पुराने आधार के ऊपरी ढांचे का विलोपन नये आधार के जन्म और विकास के लिए एक महत्वपूर्ण शर्त है। एक मार्क्सवादी के लिए एक पूंजीवादी देश में शांतिपूर्ण तरीके से समाजवादी क्रांति का कार्यान्वयन, अगर किसी तरह संभव हो तो इसका अर्थ है मजदूर वर्ग द्वारा शांतिपूर्ण ढंग से सत्ता पर कब्जा करना, बुर्जुआ वर्ग द्वारा कोई प्रतिरोध न किया जाना, बुर्जुआ राज्य संरचना का शांतिपूर्ण ढंग से ध्वंस करना और इसकी जगह एक नयी किस्म की राजसत्ता, सर्वहारा राजसत्ता की स्थापना करना। इसका अर्थ यह नहीं है कि सुधारों के जरिये बुर्जुआ राजसत्ता को सर्वहारा राजसत्ता में शांतिपूर्ण तरीके से रूपांतरित करना, जो कभी नहीं किया जा सकता। इसका मायने संसद का विलोप कर और इसको हटाकर इसकी जगह मजदूरों की जनतांत्रिक राजनैतिक संस्था की स्थापना करना है, न कि संसद को ''जन इच्छा के औजार'' में रूपांतरित करना जो किया ही नहीं जा सकता।

अंत में, वाद-विवादात्मक चर्चा-बहस के फौरी नतीजे चाहे जो कुछ भी क्यों न हों, इसमें कोई संदेह नहीं कि यह आज के समय साफ दिखाई देने वाले कम्युनिस्टों की चेतना के बहुत ही निम्न स्तर को ऊंचा उठाने में मदद करेगी। इसलिए हम इसका स्वागत करते हैं और यह जारी रखी जानी चाहिए।

जुलाई 1959 में दिया गया यह भाषण
पहली बार बांग्ला मुखपत्र गणदाबी में इसके
दिसम्बर, 1960 के विशेषांक में छपा था।
बाद में अंग्रेजी मुखपत्र सोशलिस्ट यूनिटी में
1अक्तूबर, 1962 को प्रकाशित हुआ था।